श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

भागवत-पत्रिका

हिन्दी-भाषामें एकमात्र पारमार्थिक मासिक

वर्ष १२ { भाद्रपद-आश्विन, सम्वत् २०२३ } संख्या ४-५

ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान
केशव गोस्वामी महाराज

सम्पादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

कार्यालय—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, पो० (मथुरा) उ०प्र०

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मुख-पत्र

'श्रीभागवत-पत्रिका'

के

संस्थापक और नियामक

परमहंस स्वामीॐविष्णुपाद १००८ श्री-श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराजजी

प्रचार-सम्पादक--

प्रधान—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज

सहकारी—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त भिक्षु महाराज

सहकारी सम्पादक-संघ:—

१. त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज (संघपति)

२. त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज

३. विद्यावाचस्पति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, नव्य व्याकरण, पुराण-इतिहास-धर्मशास्त्र सांख्य-आचार्य, काव्यतीर्थ, एम. ए., साहित्यरत्न

४. पण्डित श्रीयुत शर्मनलाल अग्रवाल एम. ए.; एल-एल. बी.

५. पण्डित श्रीयुत केदारदत्त तत्राडी, एम. ए. साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार

६. पण्डित बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री. साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ

७. पण्डित केशवदेव शर्मा, साहित्यशास्त्री, वेदान्ताचार्य, एम. ए. पी-एच. डी.

८. पण्डित श्रीयुत शङ्करलाल चतुर्वेदी एम. ए.; साहित्यरत्न

९. पण्डित श्रीयुत ओमप्रकाश दासाधिकारी 'साहित्यरत्न'

१०. पण्डित श्रीयुत श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी

११. पण्डित श्रीयुत सत्यपाल ब्रह्मचारी एम. ए.

कार्याध्यक्ष

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति.वेदान्त मुनि महाराज

{ वार्षिक भिक्षा ४)

पण्डित श्रीयुत कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी 'सेवा-कोविद' कर्तृक श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, कंसटीला, पो० मथुरा, (मथुरा) से प्रकाशित तथा हेमेन्द्रकुमार, बी० एस० सी०, एल-एल० बी०, कर्तृक

साधन प्रेस, डेम्पियर नगर, मथुरा में मुद्रित।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मुख-पत्र

श्रीभागवत-पत्रिका

(पारमार्थिक मासिक)

वर्ष—१२

[श्रीगौराब्द ४८० त्रिविक्रम से—४८१ मधुसूदन
सम्वत् २२२३ ज्येष्ठ— २०२४ वैशाख,
सन् १९६६ जून— १९६७ मई।]

संस्थापक तथा नियामक—
परमहंस स्वामी ॐविष्णुपाद १००८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज

सम्पादक—
त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

प्रकाशक—
श्रीकुञ्जविहारी ब्रह्मचारी 'सेवा-कोविद्'
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, पो० मथुरा (मथुरा)

वार्षिक भिक्षा ५) मात्र

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मुख-पत्र

'श्रीभागवत-पत्रिका'

के

संस्थापक और नियामक

परमहंस स्वामीॐविष्णुपाद १००८ श्री-श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराजजी

प्रचार-सम्पादक--

प्रधान—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज

सहकारी—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज

सहकारी सम्पादक-संघः—

१. त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज (संघपति)

२. त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज

३. विद्यावाचस्पति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, नव्य व्याकरण, पुराण-इतिहास-धर्मशास्त्र सांख्य-आचार्य, काव्यतीर्थ, एम. ए., साहित्यरत्न

४. पण्डित श्रीयुत शर्मनलाल अग्रवाल एम. ए.; एल-एल. बी.

५. पण्डित श्रीयुत केदारदत्त तत्राडी, एम. ए. साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार

६. पण्डित बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ

७. पण्डित केशवदेव शर्मा, साहित्यशास्त्री, वेदान्ताचार्य, एम. ए. पी-एच. डी.

८. पण्डित श्रीयुत शङ्करलाल चतुर्वेदी एम. ए.; साहित्यरत्न

९. पण्डित श्रीयुत अच्युत गोविन्द दासाधिकारी 'साहित्यरत्न'

१०. पण्डित श्रीयुत श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी

११. पण्डित श्रीयुत सत्यपाल दासाधिकारी एम. ए.

कार्याध्यक्ष

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराज

वार्षिक भिक्षा ५)

पण्डित श्रीयुत कुञ्जविहारी ब्रह्मचारी 'सेवा-कोविद' कर्तृक श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, कंसटीला, पो० मथुरा, (मथुरा)
से प्रकाशित तथा हेमन्तकुमार, बी० एस० सी०, एल-एल० बी०, कर्तृक
साधन प्रैस, डैम्पियर नगर, मथुरा में मुद्रित।

बारहवें वर्षकी श्रीभागवत पत्रिकाकी

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. आचार्य वन्दना	१।१
२. वास्तव-वस्तु	१।२
३. प्रश्नोत्तर	१।३, २।२६, ३।५६, ४-५।७६, ४-५।१०६, ६-७।१२१, ८।१५६, ९।१८४, १०-११।२०६, १२।२४८
४. सन्दर्भ-सार	१।७, २।३२, ३।६०, ४-५।६४, ६-७।१२६, ९।१८७, १०-११।२१२, १२।२५२
५. श्रीचैतन्य शिक्षामृत	१।१२, ३।७०, ४-५।१०५, ८।१६३, १०-११।२२९
६. द्वादश वर्ष	१।२०
७. श्रीकृष्ण (पद्य)	१।२३, ४-५।१०७
८. जैवधर्म	१-२४, ९।१९८
९. आनन्दचन्द्रिका-स्तोत्रम्	२।२५
१०. कीर्तनमें विज्ञान	२।२६
११. श्रीरूप गोस्वामी और प्रेम-तत्त्व	२।३६
१२. श्रील आचार्यदेवका भाषण	२।४२
१३. दैन्य निवेदन	२।४६
१४. प्रचार प्रसंग	२।४८, ४-५।९८, ८।१७२
१५. श्रीव्रजविलास-स्तवः	३।४९, ४-५।७३, ६-७।११३, ८।१५३, ९।१७७, १०-११।२०१, १२।२४१
१६. इह लोक	३।५३
१७. श्रीमद्भागवतमें माधुर्यभाव	३।६३, ४-५।८९, ९।१९३, १२।२५५
१८. जीवका स्वरूप और स्वधर्म	३।६७
१९. गुरु पूर्णिमा या व्यासपूजा	३।६९
२०. परलोक	४-५।७७
२१. श्रीराधाष्टमी	४-५।८३
२२. विनय	४-५।९३
२३. प्रतीक्षा	४-५।९७
२४. दीक्षाकी शुभ बेला पर	४-५।१०१

२५. श्री गौड़ीय वेदान्त समितिके छात्रोंकी अपूर्व सफलता ४-५।१०३
२६ केदारनाथ-बद्रीनाथकी परिक्रमा ४-५।१०४
२७. युक्त वैराग्यका स्वरूप ४-५।११२
२८. श्रीगौर-भजन ६-७।११७
२९. वैष्णवधर्मकी प्रस्तावना ६-७।१२९
३०. बापूकी तो मानो ६-७।१४०
३१. बेकार गौ और दुष्ट आदमी ६-७।१४३
३२. राष्ट्र-कलंक गोहत्या अविलम्ब बन्द हो ६-७।१४४
३३. महाप्रयाण ६-७।१४८
३४. विरह महोत्सव ६-७।१५०
३५. श्रीदामोदर-व्रत और श्रीश्रीअन्नकूट महोत्सव ६-७।१५१
३६. स्मार्तका काण्ड ८।१५७
३७. चिज्जगत् ८।१६१
३८. दुराग्रह या सर्वनाश ८।१७२
३९. श्रीमद्भागवतकी नामानुक्रमणिका ८।१७३
४०. शक्ति-संचार ९।१८१
४१. गौ-हत्या भारतसे बन्द करो (पद्य) ९।१९०
४२. श्री श्रीव्यास पूजाका निमंत्रण पत्र ९।१९९
४३. सेवापर नाम १०-११।२०५
४४. जीव सेवा और जीवके प्रति दया १०-११।२१६
४५. सनातन धर्म १०-११।२१९
४६. सम्राट कुलशेखरकी प्रार्थना १०-११।२२५
४७. त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिप्रकाश अरण्य महाराजका स्वधाम-प्रयाण १०-११।२३७
४८. श्रीभागवत पत्रिकाके सम्बन्धमें विवरण -११।२४०
४९. श्रीकृष्ण-सेवा १२।२४५
५०. श्रीश्रीजीव गोस्वामी १२।२५१
५१. वैष्णव वन्दना १२।२६४

• श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः •

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ।।

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल वंचनकर ।

वर्ष १३ { गौराब्द ४८०, मास—वामन ११, वार—अनिरुद्ध,
बुधवार, ३२ ज्येष्ठ, सम्वत् २०२३, १५ जून, १९६६ } संख्या १

आचार्य-वन्दना

नम ॐविष्णुपादाय आचार्य-सिंह-रूपिणे ।
श्रीश्रीमद्भक्ति-प्रज्ञान-केशव इति नामिने ।।

श्रीसरस्वत्यभीप्सितं सर्वदा सुष्ठु पालिने ।
श्रीसरस्वत्यभिन्नाय पतितोद्धार-कारिणे ।।

श्रीश्रीगौड़ीय-वेदान्त-समितेः स्थापकाय च ।
श्रीश्रीमायापुर-धाम्नः सेवा-समृद्धि-कारिणे ।।

वज्रादपि कठोराय चापसिद्धान्त नाशिने ।
सत्यस्यार्थे निर्भीकाय कुसंग-परिहारिणे ।।

अतिमर्त्य-चरित्राय स्वाश्रितानाञ्च पालिने ।
जीव-दुःखे सदार्त्ताय श्रीनाम-प्रेम-दायिने ।।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज

वास्तव-वस्तु

श्रीमद्‌भागवतका कथन है—वास्तव वस्तुका विज्ञान ही परमधर्म है। यदि कोई वास्तव वस्तुका विज्ञान जाने बिना ही अवास्तव वस्तुओंके विषयमें आलोचना करे तो उसके विचार अवश्य ही भ्रम-पूर्ण होंगें। वास्तव वस्तुकी दो प्रकारकी शक्तियाँ हैं—चित् शक्ति और माया शक्ति। माया शक्तिका आश्रय करके जो लोग वैकुण्ठ-शक्तिको जाननेमें असमर्थ होते हैं, वे जड़-निर्विशेषवादको ही भूलसे वास्तव-वस्तु मान बैठते हैं। वे अवास्तव वस्तुसे उपर उठकर वास्तव-वस्तुका दर्शन या अनुभव नहीं कर पाते। वस्तुके धर्म और वस्तुकी शक्तिके धर्ममें जो भेद है, उस भेदकी आलोचनाके अभावमें वे चित्-शक्ति और मायाशक्तिको एक ही मान बैठते हैं। वास्तवमें भगवान ही एक अद्वयज्ञान परतत्त्व वास्तव वस्तु हैं। उनकी एक पराशक्ति है, जो उनसे अभिन्न हैं, जिस प्रकार कस्तुरी और उसका गन्ध अथवा आग और उसकी दाहिका शक्ति अभिन्न होती है। उनकी वह पराशक्ति तीन रूपोंमें प्रकाशित है—चित्शक्ति, अचित्शक्ति और जीव शक्ति। इनमेंसे चित्शक्तिकी परिणति वैकुण्ठ जगत् है, अचित् शक्तिकी परिणति जड़ जगत् है तथा जीवशक्तिकी परिणति अगणित अणु चैतन्य जीव हैं। जो लोग वास्तव वस्तुकी शक्ति तथा उसकी परिणतिको स्वीकार नहीं करते, वे मायावादी कुतार्किक हैं। उनका ज्ञान अशुद्ध और खण्ड है।

खण्डित पदार्थ खण्डज्ञानका आराध्य होता है, परन्तु अद्वयज्ञानमें जो वस्तु-वैचित्र्य लक्षित होता है, वह चित् शक्तिकी परिणतिसे होता है— यह विषय जड़-प्रमेयवादियोंके लिये बोधगम्य नहीं है। मायिक बुद्धि सीमाविशिष्ट होती है। अतः इस असीम विषयकी यथार्थ उपलब्धि कर लेना उनके लिये असम्भव है। इसीलिये ये मायावादी लोग भगवज् ज्ञानस्वरूप वस्तुकी शक्ति-परिणत नाना प्रकारके प्रकाशोंको सम पर्यायमें ही गणना करते हैं। चित्शक्तिके परिणाम और अचित् शक्तिके परिणाम—इन दोनोंमें अभेद प्रदर्शन करने जाकर मायावादी लोग अवास्तव वस्तुके परिचयोंको मिथ्या माननेका भूल करते हैं।

वस्तुके स्वरूपमें तथा शक्तिके स्वरूपमें भेद नहीं रहने पर भी वैचित्र्य या विशेषता है। इस विशेषताका यथार्थ ज्ञान ही विज्ञान समन्वित भगवत-ज्ञान कहलाता है। इसे ही रहस्य और अङ्गोंके साथ भगवत्-ज्ञान कहते हैं। विशेषता रहित ज्ञान द्वारा—शक्तिरहित निःशक्तिक निर्विशेष ज्ञान द्वारा चरम कल्याण नहीं होता। वैसे ज्ञानसे युक्त जीव मत्सर-धर्ममें अवस्थित होता है।

मत्सर-धर्ममें काम, क्रोध, लोभ, मोह, और मद प्रबल रहते हैं। शरीरमें आत्मबुद्धि और शरीर सम्बन्धी वस्तुओंमें मेरेकी बुद्धि गाढ़ी हो उठती है। फल स्वरूप धर्म, अर्थ और काम रूप भोगमें प्रवृत्ति होती है। उस समय उस मत्सर-धर्ममें स्थित व्यक्तिके

लिये परम धर्म दुर्ज्ञेय होता है। इस प्रकार परम धर्मके प्रति उदासीन होकर संसार रूप आवागमनके चक्करमें फँसे रहते हैं तथा चतुर्वर्गको ही परम साध्य समझते हैं।

चित् शक्तिका बल प्राप्त करने पर ही सत्त्वरज-तमके हाथोंसे छुटकारा प्राप्त होता है। उसी समय उसके हृदयमें सच्चिदानन्द-वस्तु ज्ञेयके रूपमें प्रकाशित होती है। ह्लादिनी, सन्धिनी और सम्वित् इन त्रिविधशक्तियोंका वैचित्र्य भी अनुभूति का विषय होता है।

अतएव अचिन्त्य सर्व शक्तियोंसे समन्वित अखिल अप्राकृत वैचित्र्य-विलास मण्डित सच्चिदानन्द परतत्त्व ही वास्तव वस्तु हैं। इस वास्तव वस्तुके विज्ञान द्वारा ही जीव भोग और मोक्षरूप कपट धर्मसे बच कर भागवत् सेवारूप परमधर्ममें प्रवेश करता है।

—[जगद्‌गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुरके एक प्रबन्ध से]

प्रश्नोत्तर

शक्ति तत्त्व

[गताङ्कसे आगे]

१०. ह्लादिनीका क्या स्वरूप है ?

"ह्लादिनी नामकी महाशक्ति भगवानकी अनन्त शक्तियोंमें सबसे श्रेष्ठ शक्ति है। श्रीराधिका उसी ह्लादिनी शक्तिकी सार-भावस्वरूपा हैं।"

—जै. ध. ३३ श अ.

११. ह्लादिनी शक्तिका विक्रम क्या है ?

"ह्लादिनी-शक्तिकी कृपा बिना जीव प्रेमरूप प्रयोजनको प्राप्त करनेके अधिकारी नहीं होते। ह्लादिनीका बल पाकर जीवोंकी चित्तवृत्ति ब्रह्म-धामको भेदकर परव्योममें प्रवेश कर सकती है।"

—श्री म. शि. ११ वाँ प.

१२. चिच्छक्ति और मायाशक्तिमें सन्धिनी, सम्वित् और ह्लादिनीके क्या-क्या कार्य हैं ?

"चित् शक्तिके प्रभावसे चिज्जगत्, जीव शक्तिके प्रभावसे जैव जगत् और मायाशक्तिके प्रभावसे जड़ जगत् प्रादुर्भूत हुए हैं। प्रत्येक प्रभावमें सन्धिनी, सम्वित् और ह्लादिनी—ये तीनों वृत्तियाँ लक्षित होती हैं। चिच्छक्तिमें जो सन्धिनी वृत्ति है, उससे चिन्मयधाम, शरीर और चिन्मय उपकरण समूह आदि समस्त चिद्वैभव उदित हुए हैं। कृष्णनाम, कृष्णरूप, कृष्णगुण और कृष्णलीला आदि सभी तत्त्व सन्धिनीके कार्य हैं। चिच्छक्तिगत सम्विद्वृत्तिसे अप्राकृत जगतके समस्त चिन्तामणि-

भावोंका उदय हुआ है । चिच्छक्तिगत ह्लादिनी वृत्तिद्वारा समस्त प्रेमानन्दका अनुशीलन होता है। जीव शक्तिगत सन्धिनीद्वारा जीवोंकी चिन्मयसत्ता, नाम और स्थान आदिका उदय हुआ है। उसमें जो सम्वित् शक्ति है, उसके कार्यस्वरूप ब्रह्मज्ञानादिका उदय होता है। उसमें जो ह्लादिनी है उसके कार्य-स्वरूप ब्रह्मानन्दकी क्रिया होती है। अष्टाङ्गयोगगत समाधि-सुख या कैवल्य-सुख भी उसीका कार्य-विशेष है। मायाशक्तिगत सन्धिनीवृत्तिके कार्यस्वरूप चौदह भुवनमय अखिल जड़-विश्व, बद्धजीवोंके जड़ और लिङ्ग शरीर, बद्धजीवोंके स्वर्गादि लोकसमूह और सारी जड़ेन्द्रियाँ निर्मित हुई हैं। बद्धजीवोंके जड़ीय नाम, जड़ीयरूप जड़ीय गुण और जड़ीय कार्य—ये सभी सम्वित् वृत्तिके कार्य हैं। मायागत सम्वित्वृत्तिके द्वारा जड़बद्ध जीवोंकी चिन्ता, आशा, कल्पना और विचार समुदाय उदित हुए हैं। मायागत ह्लादिनी वृत्तिके द्वारा स्थूल जड़ानन्द और स्वर्गादि सूक्ष्म जड़ानन्द उदित हुए है।"

—श्री म. शि ४ र्थ प.

१३. चिन्मय देश किस प्रकार प्रकाशित हुआ है ?

"भगवानकी अचिन्त्य-शक्ति विशेषरूपसे विक्रम प्रकाश कर भगवद्वपु और जीव-शरीर तथा इन दोनोंके अवस्थान भावरूप चिन्मय-देशका प्रकाश करती हैं।।"

—प्रे. प्र. ६ म प.

१४. तटस्था शक्ति किसे कहते हैं ?

"जो शक्ति चिदचित् रूप उभय जगतके लिये उपयोगी है, वह तटस्था शक्ति है।"

—श्री म. शि. ६ वाँ परि.

१५. 'योगनिन्द्रा' क्या है ?

"स्वरूपानन्द रूप आनन्द समाधि ही 'योग-निद्रा' है।"

—अ. स. ५।१२

१६. योगमाया क्या तत्त्व हैं? वे क्या करती हैं?

"चिच्छक्तिका दूसरा नाम योगमाया है। वे कृष्णलीलामें कोई ऐसा अद्भुत प्रभाव प्रकाश करती हैं, जिससे जड़मायाविष्ट द्रष्टा उस लीलाको एक दूसरे रूपमें ही देखते और अनुभव करते हैं। वे ही गोलोकस्थ परोढ़ा अभिमानको नित्यप्रियाओं के साथ लाकर व्रजमें उन उन अभिमानोंको पृथक् सत्त्वरूपोंमें स्थिति प्रदान करती हैं।"

—जै. ध. ३२ वाँ अ.

१७. कामगायत्रीका क्या स्वरूप है ?

"वेदमाता गायत्री गोपीजन्ममें कृष्णसङ्ग लाभ कर 'कामगायत्री' हुईं। नित्यसिद्धाओंके सम्बन्धमें जो मायाकल्पित (योगमाया विरचित) व्रज-लीला है, वह निर्दोष है। क्योंकि वह माया जड़-माया नहीं हैं। चिच्छक्तिरूपा योगमायाने इस व्रज-लीला को कृष्णकी इच्छासे प्रकाश किया है। उन उप-निषदों, देवियों तथा गायत्रीने नित्यसिद्धाओंके साथ सालोक्य प्राप्तकर परकीयाभावसे कृष्णसेवा प्राप्त की थी।"

—चै. शि. ७।७

१८. जड़ जगतमें पूजिता दुर्गाका क्या कार्य है ?

"चौदह भुवनोंको "देवीधाम" कहते हैं। दुर्गा

उसकी अधिष्ठात्री देवी हैं। वे दस कर्मरूप दस भुजाओंसे युक्त हैं, वीरता और प्रतापकी प्रतीक होनेके कारण सिंहवाहिनी हैं। पापको दमन करने वाली होनेसे महिषासुर मर्दिनी हैं। शोभा और सिद्धिरूप दो सन्तान वाली हैं अर्थात् कार्त्तिक और गणेश इनके पुत्र हैं। षडैश्वर्य और जड़विद्या-संगिनीरूप लक्ष्मी और सरस्वतीकी मध्यवर्त्तिनी हैं। पापदमन करनेके लिये वेदोक्त धर्मरूप बीस प्रकारके अस्त्रोंको धारण करनेवाली हैं। काल-शोभा विशिष्टा होनेके कारण सर्प-शोभिनी हैं। दुर्गा—इन सभी विशेषताओंसे युक्त हैं। 'दुर्ग' शब्दका अर्थ कारागार है, तटस्थाशक्ति प्रसूत जीवगण कृष्णसे बहिर्मुख होने पर जिस प्रापंचिक कारागारमें बँध जाते हैं, वही दुर्गाका दुर्ग है। कर्मचक्र ही उनका दण्ड है; बहिर्मुख जीवोंके प्रति ऐसी शोधन प्रणाली विशष्ट कार्य ही गोविन्दकी इच्छानुरूप कर्म है। सर्वदा यह कार्य सम्पादन करती हैं। जब सौभाग्य-क्रमसे साधुसंगमें जीवोंकी वह बहिर्मुखता दूर होकर अन्तर्मुखता उदित होती है, उस समय पुनः गोविन्दकी इच्छासे दुर्गा ही उन जीवोंकी मुक्ति का कारण होती है। इसलिये अन्तर्मुख भाव दिखलाकर कारागार-स्वामिनी दुर्गाको परितुष्ट कर उनकी निष्कपट कृपा प्राप्त करनेकी चेष्टा करना हमारे लिये उचित है। धन, धान्य, पुत्रके आरोग्य प्राप्ति इत्यादि वरोंको दुर्गाकी कपट-कृपा समझना चाहिये। वे दुर्गा ही दस महाविद्याओं रूपमें प्रापञ्चिक जगतमें कृष्ण बहिर्मुख जीवोंके लिये 'जड़ीय आध्यात्मिक-लीला' विस्तार करती हैं।"

२०. महामाया, दुर्गा, काली इत्यादि क्या चिच्छक्ति हैं? उनका कार्य क्या है?

"जगतमें मायादेवीका 'दुर्गा', 'काली' इत्यादि नाना नामोंसे पूजन होता हैं। चिच्छक्ति ही कृष्णकी स्वरूपगत शक्ति हैं। मायाशक्ति उनकी छाया हैं। कृष्णबहिर्मुख जीवोंको शोधन कर क्रमशः कृष्णोन्मुख करना ही मायाका उद्देश्य है। माया की दो प्रकारकी कृपा है—निष्कपट कृपा और सकपट-कृपा। जहाँ वे निष्कपट कृपा करती हैं, वहाँ अपनी विद्या-वृत्ति द्वारा वे कृष्णभक्ति दान करती हैं। जहाँ सकपट कृपा करती हैं, वहाँ जड़ीय अनित्यसुख देकर जीवोंको जड़ संसारमें चालित करती हैं। जहाँ नितान्त अकृपा करती हैं, वहाँ जीवोंको ब्रह्मनिर्वाणमें फेंक देती हैं। वहीं जीवोंका सर्वनाश है।"

—'श्रुतिशास्त्रनिन्दा' ह. चि.

२१. श्रीकृष्णकी पीठावरणस्थ दुर्गा और भुवन-पूजिता दुर्गामें क्या पार्थक्य है?

"भगवद्धामके आवरणमें जो मन्त्रमयी दुर्गा हैं, वे चिन्मयी कृष्णदासी हैं; छाया-दुर्गा उन्हींकी दासीके रूपमें जगतमें कार्य करती हैं।"

—ब्र. स. ५।४४

२२. भौम-गोकुल और भौम-नवद्वीपमें योगमाया क्या कार्य करती हैं?

"योगमायाके बलसे जिस प्रकार श्रीकृष्ण-स्वरूपका भौम-गोकुलमें जन्मादि लीला होती हैं, ठीक उसी प्रकार योगमायाके बलसे श्रीगौर-स्वरूप की भौम-नवद्वीपमें शचीगर्भमें जन्मादि लीलाएँ हुआ करती है। यह स्वाधीन चिद्विज्ञान-तत्त्व है, मायाधीन चिन्ता-प्रसूत कल्पना नहीं है।"

—ब्र. स. ५।५

२३—गोलोकस्थ दुर्गाका क्या कार्य है ?

"चिच्छक्तिगता दुर्गा कृष्णकी लीलापोषिका शक्ति हैं।"

—जे. ध. १४ वाँ अ.

२४. शुद्ध शाक्त और शुद्ध वैष्णवमें क्या भेद है ?

"शाक्त और वैष्णवोंमें कोई भेद नहीं है। चिच्छक्तिको छोड़कर केवल माया-शक्तिमें जिनकी रति है, वे शाक्त होकर भी वैष्णव नहीं हैं, बल्कि केवल विषयी हैं। *** शक्ति दो नहीं है, बल्कि एक ही शक्ति चित्स्वरूपसे राधिका और जड़स्वरूपसे जड़शक्ति हैं। विष्णुमायानिर्गुण अवस्थामें चिच्छक्ति और सगुण-अवस्थामें जड़शक्ति है।"

२५. परमेश्वर या उनकी शक्तिको क्यों मानना होगा ?

"ऋतुओंके गमनागमन द्वारा मेघादिकी उत्पत्ति और वर्षण, लौह आदि धातुओंके अग्नि-संयोगसे पर्वत-विदारण और भूकम्प एवं तिथि योगसे जलकी वृद्धि और ह्रास—ये सभी भगवानके ईक्षण-जनित नियम हैं। आकर्षण और उत्ताप कदापि स्वत: सिद्ध गुण नहीं हैं। चेतन स्वयं विधातृ स्वरूप हैं और आकर्षणादि विधि-मात्र हैं। अतएव विधाताको अस्वीकार करके केवल विधि स्वीकार करना युक्तियुक्त नहीं।"

—तं० सू० २२ सू०

२६. भगवानमें विरुद्ध-धर्मका सामञ्जस्य कैसे होता है ?

"विरुद्ध धर्मसामञ्जस्यं तदचिन्त्यशक्तित्वात् ।"

अर्थात् उस तत्वमें अचिन्त्यशक्ति होनेके कारण सविशेष निर्विशेषरूप दोनों धर्म उनमें समञ्जसरूपसे वर्त्तमान हैं।

'शक्तिमत्तत्वप्रकरण' आ० सू० ६

२७. श्रीकृष्ण तत्वमें किस प्रकार विरुद्ध-धर्म का युगपत् समन्वय संभव है ?

"सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्णमें अविचिन्त्य-विरोध-भञ्जिका नामक एक शक्ति है। उस शक्तिके प्रभावसे ही उनमें परस्पर विरोधी समस्त धर्म ही अवरोध रूपसे युगपत् नित्य वर्त्तमान हैं। स्वरूपता और अरूपता, विभुता और श्रीविग्रह, निर्लेपता और भक्त-कृपालुता, अजत्व और जन्मवत्ता, सर्वाराध्यत्व और गोपत्व, सार्वज्ञ और नरभावता, सविशेषत्व निर्विशेषत्व आदि अनन्त विरोधी धर्म सभी श्रीकृष्णमें सुन्दररूपसे अपना अपना कार्य कर ह्लादिनी महाभावमयी श्रीराधाजीकी सेवा-सहायता में निरन्तर नियुक्त हैं।

—श्रीम० शि ४थं प०

ॐ विष्णुपाद जगद्गुरु श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर

संदर्भ—सार

[श्रीकृष्ण-संदर्भ ६]

अब प्रश्न होता है कि यदि श्रीकृष्ण ही समस्त शास्त्रोंके मूल प्रतिपाद्य वस्तु हैं या मूल वाच्य हैं, तब पद्मोत्तरखण्डमें परव्योमपति नारायणको और पंचरात्र आदिमें वासुदेवको क्यों सब अवतारों का मूल अवतारी कहा गया है? श्रीकृष्ण ही नारायण हैं या वासुदेव है—ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है। इसका कारण यह है कि कृष्णके धाम, परिकर, नाम और रूपसे श्रीनारायणके धाम, परिकर, नाम और रूपमें भेद दिखलाई पड़ता है।

उक्त प्रश्नका उत्तर यह है–श्रीमद्भागवत शास्त्र सर्वशास्त्र-शिरोमणि है; इसे तत्त्व सन्दर्भमें विशेष रूपसे विचार पूर्वक स्थापन किया गया है। श्रीव्यासदेवने पूर्णज्ञान लाभ करने पर श्रीमद्भागवतको प्रकाशित किया। इस ग्रन्थमें श्रीकृष्णकी स्वयं भगवत्ताका निरूपण किया गया है।

द्वारकासे अक्रूरके कहीं अन्यत्र चले जाने पर द्वारकावासियोंके ऊपर आधिदैविक, आधिभौतिक, शारीरिक और मानसिक तापसमूह बार बार उपस्थित होनेसे कोई-कोई श्रीकृष्णकी महिमा विस्मृत होकर ऐसा भूल सिद्धान्त स्थिर करते हैं कि द्वारकासे अक्रूरके चले जानेके कारण ही द्वारकामें वैसे-वैसे घोर उत्पात होने लगे। परन्तु यह कैसे संभव हो सकता है? श्रीकृष्ण जहाँ पर स्वयं विराजमान हों वहाँ उत्पात या किसी प्रकार की विपत्ति कभी आ ही नहीं सकती है।

किसी-किसीका विचार ऐसा है कि जब शाल्वने मायानिर्मित वसुदेवको मार डाला, तब वैसा देख कर श्रीकृष्ण बड़े ही शोकार्त्त हुए थे। परन्तु ये लोग आगे-पीछेके श्लोकों पर बिना विचार किये यों ही निराधार सिद्धान्त कर बैठते हैं। श्रीकृष्ण शोक मोहसे अतीत हैं—पहले ऐसा सिद्धान्त बतला कर पीछेसे उनको शोकार्त्त और मोहग्रस्त दिखलाने से पूर्वापरमें विरोध होता है। जिन्होंने कीट-पतङ्गसे लेकर ब्रह्मा-महेश तक निखिल चराचरको अपनी मायासे मोहित कर रखा है, वे एक साधारण असुरकी मायासे मोहित हो गये? जो अखण्ड ज्ञानवस्तु हैं, वे क्या आसुरी मायाको नष्ट नहीं कर सकते हैं? क्या सच्चिदानंद विग्रहमें शोक और मोह कभी तनिक भी स्पर्श कर सकते हैं? यह कदापि संभव नहीं हो सकता। परन्तु कभी-कभी भक्तोंके साथ उनमें जो शोक और मोह-सा दीखता है, वह उनके प्रेमके कारण वशीभूत हो जानेके हेतु ही होता है। स्वरूपशक्ति ह्लादिनीके सार-स्वरूप प्रेमका पारतन्त्र्य स्वीकार करके स्वरूपधर्म का व्यभिचार होने पर वह दोषकी बात नहीं होती। यथार्थ बात तो यह है कि उनके इस विशेष गुणके कारण ही भक्तजन उनका भजन करते हैं।

कृष्ण अपने इस गुणका प्रकाश असुरोंके समीप नहीं करते। द्वारकामें उत्पात-दर्शन तथा आसुरी मायासे कृष्णका मोहित होना—यह श्रीमद्भागवतका वर्णनीय विषय नहीं है। अतएव अन्यान्य पुराणोंके जो वचन श्रीमद्भागवत-विरोधी हैं, वे कदापि प्रामाणिक रूपमें ग्रहणीय नहीं हैं।

श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णकी स्वयं-भगवत्ता निरूपित है। ग्रामसभामें प्रशंसित वस्तुसे विधान-सभामें प्रशंसित वस्तु श्रेष्ठ है। उसी प्रकार पद्म-पुराण आदिमें श्रीनारायण-वासुदेव भगवान या अवतारी कहे जाने पर भी श्रीमद्भागवतमें प्रशंसित श्रीकृष्णका ही परतमत्व या श्रेष्ठत्व सिद्ध है। इसलिए यह पहले ही स्थिर हो चुका है कि कृष्ण ही स्वयं भगवान हैं।

यदि श्रीकृष्णके अतिरिक्त नारायण-वासुदेवादि दूसरोंकी स्वयं भगवत्ता स्वीकार नहीं की जाय तो पद्मोत्तरखण्ड या पंचरात्रोंके वचनोंकी संगति किस प्रकार होगी? इस प्रश्नका समाधान यह है—श्रीकृष्णकी स्वयं भगवत्ता स्वीकार करके भी उन वाक्योंकी अर्थ-संगति की जा सकती है। परव्योमाधिपति नारायण और वासुदेवको श्रीकृष्णकी ही एक एक मूर्ति विशेष मान लेनेसे कोई विरोध नहीं उपस्थित होता। श्रीमद्भागवत दशम स्कंधके १४वें अध्यायमें वर्णित ब्रह्मस्तुतिके "नरायणस्त्वं" श्लोकमें श्रीकृष्ण ही नारायण हैं—ऐसा सिद्धान्त किया गया है। और द्वारका प्रसिद्ध वसुदेवके पुत्र ही वासुदेव हैं। नारायण और वासुदेव—उपनिषिद् के वाच्य नारायण और वासुदेव ही देवकीनन्दनके रूपमें व्यक्त हैं।

अपनी विभूतियोंका वर्णन करते हुए श्रीकृष्णने स्पष्ट रूपसे यह कहा है कि भगवानोंमें मैं वासुदेव हूँ (श्रीमद्भा० ११।१६।२७)। इसी अध्यायमें श्रीकृष्ण ने और भी कहते हैं—सात्वतोंकी नवमूर्त्तियोंमें परामूर्ति हूँ। सात्वत अर्थात् भागवतजनोंकी नव-व्यूहार्चनामें वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, नारायण, हयग्रीव, वराह, नृसिंह और ब्रह्मा—इन नौ मूर्तियोंमें मैं वासुदेव ही सबसे श्रेष्ठ हूँ। इसीलिये अद्वैत-वादियोंकी व्यासपूजापद्धतिमें श्रीकृष्ण बीचमें स्थित सिंहासन पर विराजमान होते हैं तथा अन्यान्य वासुदेवादि नौ मूर्तियां उनके चारों ओर आवरण देवताके रूपमें प्रतिष्ठित की जाती हैं। क्रम-दीपका के अष्टाक्षर पटलमें श्रीवासुदेव आदि को श्रीकृष्णके आवरण-देवता—व्यूहके रूपमें दिखलाया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीताके दसवें अध्यायमें "वृष्णीनां वासदेवोऽहं" अर्थात् वृष्णियोंमें मैं ही वासुदेव हूँ—यह व्यक्त हुआ है। इसमें "वासुदेव" का अर्थ श्री बलराम से है। क्योंकि अपनी विभूतिका वर्णन करते समय अपनेको अपनी विभूति बतलाना युक्ति संगत नहीं है। अतएव भगवानगणोंमें "मैं वासुदेव हूँ"—इस वाक्यमें वासुदेवको श्रीकृष्णकी ही मूर्ति निर्द्धारित करनेके कारण सुन्दर और युक्तिसंगत व्याख्या हुई है।

जिन प्रमाणों और कारणोंसे श्रीकृष्णकी सर्वोत्कर्षता प्रतिपादित है, उन्हींके द्वारा श्रीकृष्णके नाम-रूप-गुण-लीला और परिकरों की सर्वोकर्षता भी अन्य भगवत्स्वरूपोंके नाम-रूप-गुण-लीला और परिकरोंसे अधिक बढ़ कर सिद्ध है। अष्टोत्तरशत-नाम में कहा गया है—

"सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्या तु यत् फलं ।
एकावृत्या तु कृष्णस्य नामैकं तत् प्रयच्छति ।।

—अर्थात् पवित्र सहस्रनामोंका तीन बार पाठ करनेका जो फल होता है, वह फल श्रीकृष्णनामका एक बार उच्चारण करनेसे ही प्राप्त हो जाता है ।

"पद्मपुराणके पातालखण्डमें ऐसा कहा गया है–
तारकाज्जायते मुक्तिः प्रेमभक्तिस्तु पारकात् ।"

श्रीमहादेवके वचनों द्वारा यह व्यक्त हुआ है कि राम नामकी संज्ञा "तारक ब्रह्मनाम है" तथा श्री कृष्णनामकी संज्ञा है–"पारक ब्रह्मनाम' । राम नाम से मुक्ति और कृष्णनाम से प्रेम-भक्तिकी प्राप्ति होती है । प्रेमभक्ति मोक्षको भी तिरस्कार करने वाली है ।

सब भक्तगण जिनके श्रीकृष्ण प्रेमकी वन्दना करते हैं, उन अर्जुनके प्रति सर्वशास्त्रसार गीताके उपसंहार वाक्योंमें श्रीकृष्ण-स्वरूपके भजनको ही सर्वगुह्यतम उपदेश निरूपण किया गया है। हे अर्जुन ! तुम मोहके वशीभूत होकर जिसे करना नहीं चाहते, उसे ही अन्तमें अवश होकर करोगे। अर्जुन ! ईश्वर सभी प्राणियोंके हृदयमें स्थित होकर यन्त्रारूढ़ काष्ठपुतलियोंकी भाँति माया द्वारा सभी प्राणियोंको घुमा रहा है । उसको सर्व आश्रय करो । उनकी कृपासे पराशान्ति और नित्य स्थानको प्राप्त होगे । श्रीकृष्ण इस ज्ञानको गुह्यसे गुह्यतर ज्ञान बतला कर पुनः कहते हैं—अब मैं परम और सर्व गुह्यतम ज्ञानका वर्णन कर रहा हूँ, तुम सावधानीसे इसका श्रवण करो । तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो, इसलिए तुम्हारे हितके लिये ही कह रहा हूँ—'तुम मुझमें चित्तवाला होओ, मेरे भक्त होओ, मेरी अर्चना करो, मुझे नमस्कार करो। ऐसा करनेसे तुम निश्चय ही मुझे प्राप्त होगे । मैं शपथ करके कह रहा हूँ । तुम सर्व धर्मोंका परित्याग कर मेरे शरणागत होओ; मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा ।"

अर्जुनको युद्धमें प्रेरित करनेके लिये ऐसे उपदेश अनावश्यक हैं । अन्तर्यामि-द्वारा प्रेरित होकर ही उनके साथ युद्ध करना अनिवार्य है । अतएव गीता युद्धाभिधायक ग्रन्थ नहीं—परमार्थाभिदायक ग्रन्थ है। उसमें पुनः गुह्य, गुह्यतर और सर्व गुह्यतम आदि शब्दोंके प्रयोग द्वारा उन वचनोंसे श्रोताका ध्यान आकर्षण करके श्रीकृष्णका मुख्य वक्तव्य व्यक्त हुआ है ।

अट्ठारहवें अध्यायके इन श्लोकोंका गुरुत्व प्रकाश करते हुए कह रहे हैं, जो एक हैं, अथच सबके अन्तर्यामी ईश्वर हैं, वे ही संसार-यन्त्र पर आरूढ़ सभी भूतोंको अपनी माया द्वारा भ्रमण करानेके लिये हृदयमें वर्त्तमान हैं। सर्वतोभावेन यही पुरुष सबमें विहार कर रहा है । अथवा सभी इन्द्रियोंके द्वारा अनुकूल अनुशीलन करके उसके शरणापन्न होओ, ऐसा होने होनेसे ही परम शान्ति प्राप्त कर सकोगे ।

तदनन्तर भगवानने सोचा,–अर्जुन ऐकान्तिक भक्ताग्रगण्य हैं। उनके लिये उपरोक्त साधारण ईश्वरोपासना पर्याप्त नहीं है । ऐसा सोच कर स्वयं भगवान श्रीकृष्ण महा कृपा करके उपासनाका परम निगूढ़तम रहस्य खोल कर अर्जुनसे इस प्रकार बोले—मेरी सर्व गुह्यतम परम उपदेश वाणी श्रवण करो ।

यद्यपि 'गुह्यतम' कहनेसे गुह्य और गुह्यतरसे निगूढ़ या श्रेष्ठका बोध होता है; तथापि 'सर्व'

शब्दका प्रयोग कर श्रीकृष्णने गुह्यतम श्रीनारायण-भजन प्रतिपादक वचनोंसे भी अपने भजन (कृष्ण-भजन) प्रतिपादक वचनोंकी श्रेष्ठताकी स्थापना की है। बहुतोंमें से एककी श्रेष्ठता प्रदर्शित करनेके लिए 'तमप्' प्रत्ययका प्रयोग किया जाता है। श्रीकृष्ण भजनकी सर्वश्रेष्ठता और उत्कर्षता हेतु 'सर्वगुह्यतम' शब्दका प्रयोग हुआ है। अपने वैसे सर्व गुह्यतम उपदेशको श्रवण करनेमें अर्जुनको रुचि विशिष्ठ करनेके लिए कहते हैं—'मैं दृढ़ता-पूर्वक कह रहा हूँ, तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो। मेरे वचनका श्रवण करना तुम्हारा कर्त्तव्य है।' श्रीकृष्णने स्वयं ही बिना पूछे वैसे परम निगूढ़तम उपदेशवाणीका प्रकाश क्यों किया ? इसका कारण यह है कि—'ततः'इत्यादि अर्थात् तुम मेरे अतिशय प्रिय हो, इसलिए तुमसे कुछ भी छिपा कर रखना उचित नहीं है। तुम्हारी प्रीतिके प्रभावसे हृदयद्वार खुल जानेके कारण सब रहस्य व्यक्त हो रहा है।

उस गुह्यतम उपदेश वाणीको अवगत होनेके लिए अर्जुनकी उत्कंठा उज्ज्वलित हो उठी और वे सावधानीसे मन लगा कर श्रवण करनेके लिए प्रस्तुत हो गये। श्रीकृष्णने ऐसा देख कर उनके प्रति अपने सर्वगुह्यतम उपदेश वाणीका श्रवण कराना आरंभ किया—"मन्मना भव" इत्यादि। तुम्हारे सामने मित्रके रूपमें विराजमान जो मैं हूँ, उनमें मनको लगा दो; मेरी प्रीतिके लिए मेरा भजन करो—अपने सुखके लिए नहीं 'मन्मना', 'मद्भक्त' 'मद्याजी', और 'मां नमस्कुरु'—सर्वत्र ही 'मत्' शब्द का प्रयोग रहनेके कारण नाना प्रकारसे श्रीकृष्णका भजन करना ही कर्त्तव्य है, यही निर्धारित हुआ।

नाना विषयोंमें विक्षिप्त चित्तको किस प्रकार सम्पूर्णरूपसे श्रीकृष्णमें लगाऊँ ?—अर्जुनकी वैसी आशङ्काका समाधान करनेके लिए कहते हैं—'सर्व धर्मान् परित्यज्य' इत्यादि। संध्या-बंदना आदि नित्य धर्मोंका तथा प्रायश्चित्त आदि नैमित्तिक कर्मों का भी परित्याग करके मेरे शरणागत होओ।' 'परि'—शब्दसे सभी धर्मोंके स्वरूपतः त्यागको सूचित किया गया है। धर्म त्याग दो प्रकारसे होता है—स्वरूपतः और फलतः त्याग। अनुष्ठानका त्याग ही स्वरूपतः त्याग है और फलकी कामनासे रहित होकर धर्मानुष्ठान करना ही—फलतः त्याग है। सर्वतोभावेन श्रीकृष्ण शरणागतिमें बाधक वर्णा-श्रमधर्मका त्याग करनेसे पाप स्पर्श कर सकता है। अतएव वर्णाश्रमधर्मको कैसे त्याग करूँ ? अर्जुन की आशङ्काको दूर करनेके लिए वह कह रहे हैं—"मैं तुम्हें समस्त पापोंसे मुक्त:कर दूँगा।"

श्रीकृष्णकी आज्ञाका पालन करना ही धर्म है; और उनका उल्लंघन करना ही अधर्म है। वर्णा-श्रमधर्मका परित्याग करके श्रीकृष्णका भजन करने से पाप नहीं लगता। श्रीकृष्णके भजनके लिए वर्णाश्रमधर्मका त्याग करनेसे पाप नहीं होता—भगवान अर्जुनमें दृढ़ता लानेके उद्देश्यसे व्यतिरेक भावसे (निषेध वाक्य द्वारा) कहते हैं—तुम शोक न करो, तुम्हें चिन्तित होनेका कोई कारण नहीं। मैं तुम्हें समस्त पापोंसे मुक्त कर दूँगा। अतएव तुम निश्चिन्त मनसे मेरा भजन करो।

किसी-किसीको ऐसा संशय हो सकता है कि कृष्ण-भजन ही गीताका सार उपदेश है, तब गीता में अनेक प्रकारके योगोंके उपदेश करनेका क्या तात्पर्य है ? इस प्रश्नका उत्तर यह है—उनके तार-तम्य ज्ञानको समझानेके लिए । नाना-प्रकारके साधनों और उनके फलोंका उल्लेख किये बिना श्रीकृष्ण-भजनकी सर्वोत्तमता नहीं दिखलाई जा सकती है। उनके कौन स्वरूपका भजन करूँ ? कोई-कोई कहते हैं—विश्वरूप ही सर्वश्रेष्ठ और परम रूप है। परन्तु यह भ्रम है। इसका कारण यह है कि विश्वरूप या विराट आदिरूप श्रीकृष्ण रूपके एकान्त अधीन हैं। यदि विश्वरूप ही मूल या श्रेष्ठरूप होता तो श्री कृष्ण उस रूपको इच्छा करते ही दिखला नहीं सकते थे। दूसरी ओर विश्वरूप उनके अधीन होनेके कारण इच्छा करते ही दिखला दिया । इसके अतिरिक्त विश्वरूप प्रदर्शनके पश्चात ही वहाँ ऐसा उल्लेख है कि 'भगवानने ऐसा कह कर अर्जुनको पुनः 'निजरूप' दिखलाया । नराकार श्यामसुन्दर श्रीकृष्णरूप ही उनका अपना स्वरूप है—यही स्थिर हुआ। इसलिए विश्वरूप श्रीकृष्णका साक्षात् स्वरूप नहीं है तथा वह परम भक्त अर्जुनके लिए इष्ट भी नहीं है। इसका कारण यह कि विश्वरूपका दर्शन करके अर्जुनको विस्मय और भय हो गया था—इसलिए इष्ट न होनेके कारण अर्जुनने उस रूपको अन्तर्द्धान कर श्रीकृष्णरूप पुनः दिखलानेकी प्रार्थना की थी।

भगवानने विश्वरूप दिखलानेके लिए अर्जुनको दिव्य दृष्टि प्रदान की थी, इसलिए विश्वरूपको श्रेष्ठरूप मानना या उसकी महिमा अधिक स्वीकार करना भूल है। नराकृति परब्रह्मको दर्शन करनेके लिए अर्जुनकी स्वाभाविकी दृष्टि सम्पूर्ण उपयुक्त थी। विश्वरूप देववपु अर्थात् देवता-श्रेणीका रूप है, उसे दर्शन करनेके लिए भक्त दृष्टिसे निम्नकोटि वाली दिव्य दृष्टि (देवता सम्बन्धी दृष्टि) की आवश्यकता होती है। इसीलिए भगवानने अर्जुनकी भक्ति दृष्टिको आच्छादित करनेके लिए दिव्य दृष्टि प्रदान की थी। परन्तु विशेष एक बात यह है कि दिव्यदृष्टि सम्पन्न व्यक्ति नराकृति परब्रह्मका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं है। इस बातको इसी अध्यायके अन्तमें स्पष्ट रूपसे कहा गया है—तुम जिस रूपको (नराकृति श्रीकृष्ण रूपको) देख रहे हो उसका दर्शन करना अत्यन्त दुर्लभ है। देवतागण भी इस रूपको दर्शन करनेकी आकांक्षा रखते हैं। परन्तु इस प्रकारका दर्शन केवलमात्र अनन्यभक्ति द्वारा ही सुलभ है। "सुदुर्दर्शमिदं रूपं" से कोई-कोई विश्व-रूपको समझते हैं, परन्तु उनका ऐसा समझना भूल है। क्योंकि अर्जुनके द्वारा ही यह स्पष्ट किया गया है—"हे जनार्दन ! तुम्हारा यह मनुष्य रूप दर्शन करके" इत्यादि वचनोंके पश्चात् ही सुदुर्दर्श वाला वाक्य कहा गया है।

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रौती महाराज.

श्रीचैतन्य शिक्षामृत

चतुर्थ-वृष्टि (रागानुगा भक्ति-विचार)

विधि और राग

अब तक हमने केवला वैधी भक्तिका विचार किया है। वैधी भक्तिके अतिरिक्त साधन भक्तिका और भी एक अंग हैं; उसका नाम है—रागानुगा-साधन भक्ति। हम पहले ही कह आये हैं कि हरितोषण (भगवानकी प्रसन्नता) दो प्रकारसे साधित होती है। एक विधि-मार्गसे तथा दूसरा राग-सम्बन्धसे। यहाँ पर विधि और रागके तात्त्विक भेदके विषयमें विचार करना आवश्यक है। कर्त्तव्य-बुद्धि द्वारा विचारसंगत जो ईश-उपासना की साधन-प्रणाली स्थिर की जाती है, उसका नाम वैधी भक्ति है। कर्त्तव्य बुद्धिसे जो नियम स्थिर किये जाते हैं, उसे विधि कहते हैं। स्वाभाविक रुचिसे जो वृत्ति उत्तेजित होती है उसको राग कहते हैं। इष्ट वस्तुमें स्वाभाविकरूपमें जो परमाविष्टता—अत्यधिक आविष्टता होती है, वही राग हो पड़ती है *। जिस वस्तुके प्रति राग होता है, वही उसकी इष्ट वस्तु है। राग कार्यमें विचार या कर्त्तव्याकर्त्तव्यके विवेककी आवश्यकता नहीं होती। राग सिद्धवृत्तिस्वरूप है। जड़बद्ध जीवकी आत्मामें जो राग है, वह आत्माके देहात्म-अभिमानके कारण विकृत होकर इन्द्रियोंके विषयोंको ही अपना इष्ट या विषय मानने लगा है। इस बद्ध दशामें किसीका राग फूलोंके प्रति, किसीका राग आहारके प्रति, किसीका राग मादक द्रव्योंके प्रति, किसीका राग सुन्दर-सुदर वस्त्रोंके प्रति, किसीका आलीशान महलोंके प्रति और किसीका राग कामिनीके प्रति धावित होकर जीवोंको संसारचक्रमें भ्रमण करा रहा है। इसलिये बद्ध जीवोंका भगवत्-विषयक राग बहुत ही सुदूरवर्ती हो पड़ा है। राग-स्वरूपा भक्ति उनके लिये सुदुर्लभ हो गयी है।

विधि और राग विपरीत तत्त्व नहीं है

ऐसी दशामें हिताहित विचारपूर्वक भगवदुपासना ही एकमात्र कर्त्तव्य है। इस हिताहितविवेकसे विधिका जन्म होता है। विधि-पालनका उद्देश्य रागकी वृद्धि होना चाहिये। विधि कदापि रागके विपरीत तत्त्व नहीं है। विधिको अंग्रेजीमें Rule, Rite, Ritualism कहते हैं तथा रागको Free Spontaneous Attachment कहते हैं। विधि और राग भिन्न तत्त्व होने पर भी विशुद्ध अवस्थामें एक तात्पर्य विशिष्ट हैं। निर्मल विधि रागके विषय में सहायक होती हैं। निर्मल राग भगवानकी इच्छारूप विधिके अनुगत होता है। भगवानके पक्षमें विधिकी जय है। जीवके लिये रागके प्रति आदर होना श्रेष्ठ है। जड़ जगतमें राग और विधि

---

* इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत्। तन्मयी या भवेद्भक्तिः साऽत्र रागात्मिकोदिता ॥ (भ. र. सि. पू. ८१)

परस्पर विपरीत लक्षित होते हैं। ऐसा लक्षित होने का कारण केवल जीवोंके रागकी अस्वस्थता मात्र है। राग स्वास्थ्य लाभ करने पर विधिका कार्य समाप्त हो जाता है, अतएव अब वह अपना कार्य समाप्त होने पर सहज ही निवृत्त हो जाता है। अतएव निरोग अवस्थामें जीवके लिये राग ही सर्व प्रधान है। असद् वस्तुगत राग जिस प्रकार निम्न कोटिका होता है, उसी प्रकार सद्वस्तुगत राग उत्तम होता है। औषधिके साथ शरीरका जो सम्बन्ध है, विधिके साथ रागका भी वही सम्बन्ध है। शरीरके कार्य अनन्त हैं, परन्तु औषधिका कार्य शरीरको निरोग और पुष्ट मात्र करना है। शरीर निरोग और पुष्ट हो जाने पर औषधिकी आवश्यकता नहीं रह जाती और उसे छोड़ दिया जाता है; उसी प्रकार विधिका कार्य रागकी रक्षा और पोषण करना है। पुष्टराग विधिकी अपेक्षा नहीं करता। उस पुष्ट रागके कार्य अनन्त हैं। शुद्ध जीव अर्थात् जड़मुक्त जीव ही विशुद्ध भगवद् रागके आश्रय होते हैं, दूसरे नहीं। विशुद्ध भगवद्रागका नाम रागात्मिका भक्ति है। भगवल्लीलाके उपकरण स्वरूप शुद्ध जीव ही रागात्मिका भक्तिके अधिकारी हैं। तत्त्वज्ञानके विचार-प्रसंगमें यह दिखलाया जायगा कि ब्रजवासियोंके अतिरिक्त और कोई भी रागात्मिका भक्तिका अधिकारी नहीं है।

रागात्मिका और रागानुगाभक्ति

यहाँ इस विषयमें केवल इङ्गित मात्र दिया जा रहा है। ब्रजवासी गण भगवान श्रीकृष्णचन्द्रके प्रति जो रागात्मिका भक्ति करते हैं, उस विषयमें शास्त्रोंमें जो वर्णन किया गया है, उसका श्रवण करके बद्ध जीवोंके हृदयमें उसे अनुकरण करने (प्राप्त करने) का जो लोभ पैदा होता है, उस लोभसे जो भक्ति होती है, उसे रागानुगा भक्ति कहते हैं *। यहाँ यथार्थ विषयमें लोभ ही उस भक्तिका उत्तेजक है, शास्त्र युक्ति या विधि उसका उत्तेजक नहीं +। अन्यान्य उपायोंका अवलम्बन करने पर विधि जिस कार्यमें जीवकी प्रवृत्तिको उत्तेजित करनेका प्रयास करती है, सौभाग्यसे एकमात्र लोभ ही जब उसको उत्तेजना करता है, तब उस भक्तिको साधनकालमें वैधी भक्ति नहीं कहा जायगा; उसको रागानुगा भक्ति कहा जाता है। अतएव साधन भक्ति दो प्रकारकी होती है—वैध साधन भक्ति और रागानुगासाधन भक्ति। वैधसाधन भक्तिका वर्णन पहले ही किया जा चुका है, इस समय रागानुगा साधन भक्तिका विवेचन किया जा रहा है।

रागात्मिका भक्तिका आस्वादन करने वाले जिस भावसे श्रीकृष्णचन्द्रके प्रति प्रीति किया करते हैं, उसी भावको प्राप्त करनेके लिये जिनको लोभ उत्पन्न होता है, वे ही रागानुगा भक्तिके अधिकारी हैं। रागानुगा भक्ति, वैधी-साधनभक्तिके जो सब अङ्ग बतलाये गये हैं, उन सभी अङ्गोंको स्वीकार

* रागात्मिकैक निष्ठा ये व्रजवासिनादयः। तेषां भावाप्तये लुब्धो भवेदत्राधिकारवान्॥ (भ. र. सि. पू. २।१४७)

+ तत्तद्भावादिमाधुर्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते। नात्र शास्त्रं न युक्तिं च तल्लोभोत्पत्तिलक्षणम्॥ (भ. र. सि. पू. २।१४८)

करती है। वैध भक्त विधि द्वारा उत्तेजित होकर उन अङ्गोंका पालन करते हैं, परन्तु रागानुगा साधक भक्त रागानुगा प्रवृत्तिद्वारा ही उन उन कार्योंमें नियुक्त होते हैं † । शरीरयात्रा-निर्वाहक शारीरिक कर्म, मानसिक कार्य और सामाजिक क्रियाएँ—यह सब बद्धजीवोंके जीवन - निर्वाहके लिये आवश्यक हैं। मनुष्य जीवनको भगवद्विमुख होनेसे बचाकर भक्ति पथ पर चलानेके लिये, उपयोगी बनानेके लिये जिस वैध चेष्टाओंका उल्लेख पहले किया जा चुका है, उनका पालन करना भी रागानुगा साधकोंके लिये आवश्यक है। रागानुगा भक्तोंका साधन अन्तरङ्ग है। साधन कालमें जीव किस भावको ग्रहण करेगा ? अन्तरङ्ग साधनके लिये उपयोगी बननेके लिये वैधी भक्तिके अङ्गोंको अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये। यदि उन्हें ग्रहण नहीं करते तो साधकका बहुत ही अहित होता है। या तो वैसे साधकका जीवन असमयमें ही समाप्त हो जायगा और नहीं तो वह बहिर्मुख होकर रागानुगा वृत्तिको ही खो देगा। विशेष बात तो यह है कि सर्वप्रकारसे भगवद् आलोचना स्वीकृत नहीं होनेपर अन्तरङ्ग साधन कभी भी पुष्ट और संरक्षित नहीं हो सकता। रागानुगा वृत्ति पुष्ट होने पर भी श्रवण-कीर्तन आदि अङ्ग कभी भी परित्यक्त नहीं होंगे। तब जिस प्रकार वैध भक्त जीवनमें नैतिक सेश्वरधर्म पर्यवसित होकर कुछ भिन्न आकार धारण कर लेता है, उसी प्रकार रागानुग भक्त जीवनमें वैधजीवन कुछ-कुछ बदल कर—थोड़ा-सा स्वाधीन लक्षणसम्पन्न होकर कुछ पृथक भाव अवलम्बन करता है। इससे कहीं-कहीं इन विधियोंमें कुछ तारतम्य और कहीं-कहीं रूपान्तर भी हो पड़ता है। वैसे भक्तोंका आचरण देखनेसे ही उक्त बातें स्पष्ट रूपमें दिखालायी पड़ेंगी। ये सब परिवर्तन किसी शास्त्र-विधिके द्वारा नहीं होते; बल्कि भक्तोंकी रुचिसे उत्पन्न होते हैं। अतएव इसका निश्चित उदाहरण नहीं दिया जा सकता। उदाहरण केवल वैधविषयके ही स्थिर होते हैं। रागात्मिका भक्तिमें जो विभाग और सम्बन्ध-विचार होता है, रागानुगा भक्तिमें भी वे ही विभाग और सम्बन्ध विचारित होते हैं। भक्तिरस-तन्त्रमें इस विषयका विस्तृत विवेचन किया जायगा। यहाँ सक्षेपमें यह जान लेना चाहिये कि रागात्मिका भक्तिको भाँति रागानुगा भक्ति भी दो प्रकारकी

† वैध भक्त्यधिकारी तु भावाविर्भावनावधिः। अत्र शास्त्रं तथा तर्कमनुकूलमपेक्षते॥
कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्। तत्तत्कथारतश्चासौ कुर्याद्वासं व्रजे सदा॥
सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि। तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥
श्रवणोत्कीर्तनादीनि वैधभक्त्युदितानि तु। यान्यङ्गानि च तान्यत्र विज्ञेयानि मनीषिभिः॥

(भ. र. सि. २।१४९-१५२)

होती है—(१) कामरूपा (क), और (२) भावरूपा (ख)।

काम रूपा

विषय संभोगकी तृष्णाको काम कहते हैं। रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श—ये इन्द्रियार्थ कहलाते हैं। ये इन्द्रियार्थ ही बद्धजीवोंके विषय हैं। इसलिये पण्डितजन इन्द्रिय-तृष्णाको काम कहते हैं। जिस स्थलपर एकमात्र परमतत्त्व रूप भगवान् ही विषय के रूपमें वरण किये जाते हैं, वहाँ विषय-संभोग-तृष्णाको प्रेम कहते हैं। काम और प्रेमके स्वरूपमें भेद नहीं है, भेद केवल उनके द्वारा ग्रहण किये गये विषयका है। नित्यसिद्धा व्रजगोपियोंके विषय केवल सच्चिदानन्द स्वयं-भगवान् कृष्ण हैं, इसलिये व्रजतत्त्वमें उनके प्रेमको ही काम कहते हैं। क्योंकि वहाँ काम और प्रेममें भेद नहीं है। उनकी रागात्मिका भक्ति कामरूपा होती है। उनकी भक्तिके अनुकरणकारी जीवकी रागानुगा भक्ति भी कामरूपा होती है। जल और तृष्णा (प्यास) में जो सम्बन्ध है, साध्य और साधकमें उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी सम्बन्ध न रहनेके कारण व्रजवालाओंकी रागात्मिका भक्तिको सम्बन्धरूपा नहीं कह सकते; उसे कामरूपा कहते हैं। इस कामरूपा रागानुगा भक्तिमें कृष्ण-सुखके अतिरिक्त किसी भी अन्य सुखकी कामना या चेष्टा नहीं रहती (क)।

सम्बन्ध रूपा

प्रभु और दास सम्बन्ध, सखा सम्बन्ध, पिता-पुत्र सम्बन्ध और विवाहित स्त्री-पुरुष सम्बन्ध—इन चारों मुख्य सम्बन्धोंवाली रागात्मिका भक्ति ही सम्बन्धरूपा है। उसके अनुकरणकारी जीवोंकी

(क) सा कामरूपा संभोगतृष्णां या नयति स्वताम्। यदस्यां कृष्णसौख्यार्थमेव केवलमुद्यमः।
इयं तु व्रजदेवीषु सुप्रसिद्धा विराजते। आसां प्रेमविशेषोऽयं प्राप्तः कामपि माधुरीम्॥
तत्तत्क्रीडानिदानत्वात्काम इत्युच्यते बुधैः। प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथामिति॥
इत्युद्धवादयोऽप्येतं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः। कामप्राया रतिः किन्तु कुब्जायामेव सम्मता॥
(भ. र. सि. पू. २।१४२-४५)

(ख) सम्बन्धरूपा गोविन्दे पितृत्वाद्यभिमानिता। अत्रोपलक्षणतया वृष्णीनां वल्लभा मताः॥
(भ. र. सि. पू. २।१४६)

(क) कामानुगा भवेत्तृष्णा कामरूपानुगामिनी। संभोगेच्छामयी तत्तद्भावेच्छात्मेति सा द्विधा॥
श्रीमूर्त्तेर्माधुरीं प्रेक्ष्य तत्तलीलां निशम्य वा। तद्भावाकांक्षिणो ये स्युस्तेषु साधनताऽनयोः॥
पुराणे श्रूयते पाद्मे पुंसामपि भवेदियम्॥ पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः।
दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम्॥
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुद्भूताश्च गोकुले। हरिं संप्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात्॥
(भ. र. सि. पू. २।१५३-५९)

सम्बन्धरूपा रागानुगाभक्ति साधनकालमें लक्षित होती हैं। (क)

किसी व्रजवासी भक्तके भावके प्रति लोभ पैदा होने पर रागानुगा भक्ति साधक अपनेको उनका अनुचर मानकर उनके आनुगत्यमें, उनके भावमें भावित अपने सिद्ध शरीरसे अन्तरङ्ग भगवद्भजन करेंगे। जब तक उनके हृदयमें प्रेमकी प्रागवस्था-रूप भावका उदय न हो जाय, तब तक अपने भजन के अनुकूल बहिरङ्ग साधनके रूपमें वैधी भक्तिके अङ्गोंका आचरण करते रहना चाहिये। शास्त्र और युक्ति अपने भावके अनुकूल होने पर उनका अनुशीलन करेंगे, कृष्ण और कृष्णभक्तोंकी श्रद्धापूर्वक सेवा करेंगे तथा उनकी लीला-कथा अनुशीलनके पीठस्वरूप व्रजमें वास करेंगे। शरीरके द्वारा व्रजवास किसी कारण संभव न होने पर मनसे सदासर्वदा व्रजमें वास करेंगे।

वैधीभक्तिमें शास्त्र और युक्तिगत विधि ही एकमात्र कारण है। रागानुगा भक्तिमें श्रीकृष्ण या कृष्णभक्तोंकी कृपा ही एकमात्र कारण है। कोई-कोई वैधीभक्तिको प्रेमभक्तिका मर्यादास्वरूप होनेके कारण मार्यादामार्ग भी कहते हैं तथा रागानुगाभक्तिको प्रेमभक्तिकी पुष्टिकारिणी होनेके कारण पुष्टिमार्ग भी कहते हैं। वैधीभक्ति सदैव ऐश्य ज्ञानयुक्त होती है (ख), परन्तु रागानुगाभक्ति सर्वदा ऐश्यज्ञानरहित होती है। कहीं-कहीं वैध भक्तगण वैधी प्रवृत्तिका अवलम्बन करते हैं। अगली वृष्टिमें रागानुग भगवद्भक्तोंके लक्षणआदि का विचार किया जायगा।

पंचम-वृष्टि प्रथम धारा

भावभक्तिका विचार

प्रेमभक्ति ही साधन भक्तिका फल है। प्रेमभक्ति की दो अवस्थाएं हैं—भाव अवस्था और प्रेम अवस्था (ग)। प्रेमको सूर्यके साथ तुलना देने पर भावको उस प्रेम-सूर्यकी किरण कहा जा सकता

(क) रिरंसां सुष्ठु कुर्वन यो विधिमार्गेन सेवते।। केवलेनैव स तदा महिषीत्वमियात् पुरे।
सा सम्बन्धानुगा भक्तिः प्रोच्यते सद्भिरात्मनि। या पितृत्वादिसम्बन्धमननारोपणात्मिका।
लुब्धैर्वात्सल्यसख्यादौ भक्तिः कार्यात्र साधकैः। व्रजेन्द्र सुबलादीनां भावचेष्टितमुद्रया।।
(भ. र. सि. पू. २।१५७-१५९-६०)

(ख) ऐश्वर्यज्ञानशून्यत्वाद्दोषं रागे प्रधानता।

(ग) क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत् सुदुर्लभा। सान्द्रानन्द विशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी च सा।।
क्लेशास्तु पापं तद्बीजमविद्या चेति तत्त्रिधा। अप्रारब्धं भवेत् पापं प्रारब्धं चेति तद्द्विधा।।
वृजिन्यारम्भकं पापं यत् स्यात् प्रारब्धमेव तत्। शुभानि प्रीणनं सर्वं जगतामनुरक्तता।।
सद्गुणाः सुखमित्यादीन्याख्यातानि मनिषिभिः। सुखं वैषयिकं ब्राह्ममैश्वरञ्चेति तत्त्रिधा।।
मनागेव प्ररूढायां हृदये भगवद्रतौ। पुरुषार्थास्तु चत्वारस्तृणायन्ते समन्ततः
साधनौघैरनासङ्गैरलभ्या सुचिरादपि। हरिणा चाश्वदेयेति द्विधा सा स्यात् सुदुर्लभा।।
ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्द्धगुणीकृतः। नैतिभक्तिसुखांभोधेः परमाणुतुलामपि।।
कृत्वा हरिं प्रेमभाजं प्रिय वर्ग समन्वितम्। भक्तिर्वशी करोतीति श्रीकृष्णाकर्षिणी मता।।
अग्रतो वक्ष्यमाणायास्त्रिधा भक्तेरनुक्रमात्। द्विशः षड्भिः पदैरेतन्माहात्म्यं परिकीर्त्तितम्।।
(भ० र० सि० पू० १ ल०)

है। भावविशुद्ध सत्त्व-स्वरूप रुचिद्वारा चित्तको आर्द्र करता है। पहिले भक्तिका साधारण लक्षण बतलाते हुए जिस कृष्णानुशीलनका उल्लेख किया गया है, वही कृष्णानुशीलन जिस अवस्थामें विशुद्ध-सत्त्व स्वरूप हो पड़ता है और रुचिके द्वारा चित्तको मसृन अर्थात् आर्द्र करता है, उसी अवस्थाको भाव कहते हैं (ख)। भाव मनोवृत्ति पर आविर्भूत होकर मनोवृत्तिकी स्वरूपताको प्राप्त कर लेता है। तत्त्वतः भाव स्वयं प्रकाशरूप है; परन्तु मनोवृत्ति-गत होकर प्रकाश्य (जिसे प्रकाशित किया जाय) के रूपमें प्रतीत होता है। यहाँ जिसको भाव कहा गया है, उसीका दूसरा नाम रति है। रति स्वयं आस्वाद स्वरूप होने पर भी कृष्ण आदि विषयको आस्वादन करनेमें हेतुके रूपमें ग्रहण की गयी है। यहाँ यह जान लेना चाहिए कि रति चित् तत्त्वका भाव है; वह जड़ान्तर्गत तत्त्व नहीं है। बद्ध जीवोंकी जो जड़ विषयोंमें रति होती है, वह उस जीवके चिद् विभागगत भावकी जड़ सम्बन्धसे उत्पन्न विकृति मात्र है। जिस समय जड़में भगवद् अनु-शीलन होता है, उस समय वह रति सम्विदंशसे भगवत् सन्बन्धी आलोच्य विषयोंके आस्वादनका हेतु होती है। उसी समय ह्लादनीके अंशसे स्वयं आह्लाद प्रदान करती है।

रति ही प्रेमकल्पतरुका बीज स्वरूप है। जिस समय अन्यान्य भाव समूह उपस्थित होकर रतिकी सहायता करते हैं, उस समय रति सबकी सहायता से प्रेम वृक्षको प्रकट करती है। रस-तत्त्वके प्रसङ्ग में इस विषयको उदाहरणोंके द्वारा समझाया जायगा।

रति प्रेमका वह सबसे सूक्ष्मसे सूक्ष्म अंश है, जिससे आगे प्रेमका कोई और सूक्ष्म अंश हो ही नहीं सकता। जिस प्रकार एकसौ (१००) के अङ्क में सबसे छोटा अखण्डित विभाग है—एक (१), (अङ्गरेजीमें जिसे Unite कहते हैं), प्रेम तत्त्वमें भी उसी प्रकार रति भी एक अखण्डित सबसे छोटा या सूक्ष्म विभाग है। साधन भक्तिमें रुचि, श्रद्धा, आसक्ति आदि जिन भावोंको देखा गया था, वे एक अङ्कस्थलीय रतिके भग्नाङ्कमात्र है। साधनके अङ्गोंमें श्रद्धा या रुचि न रहनेसे साधन सम्पूर्ण रूपसे विफल है। वर्णाश्रम धर्ममें जिस श्रद्धा और रुचिका उल्लेख है, वह श्रद्धा और रुचि रतिके ही भग्नाङ्क तो हैं, फिर भी ये भग्नाङ्कके प्रतिबिम्बित भाव है। उससे भी नीचे नीति विरुद्ध जीवनमें रतिके भग्नाङ्क समूह अत्यन्त विकृत होते हैं। नैतिक जीवनमें वे कुछ-कुछ विधि-बद्ध होते हैं। सेश्वर नैतिक जीवनमें वे अधिकतर विधिबद्ध होते हैं, फिर भी विकृतप्राय होते हैं। साधन-भक्त जीवनमें वे विकृत तो नहीं होते, परन्तु अंश होनेके कारण पूर्णाङ्क नहीं होते। उत्तम भक्त (भागवत) जीवन उदित होते ही एकाङ्क स्थलीय

(ख) शुद्ध सत्त्वविशेषात्मा प्रेमसूर्यांशुसाम्यभाक्। रुचिभिश्चित्तमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते॥
भा० र० सि० पू० ३ ल०

आविर्भूय मनोवृत्तौ व्रजन्ती तत्स्वरूपताम्। स्वयं प्रकाशमानापि भासमाना प्रकाश्यवत्॥
वस्तुतः स्वयमास्वादस्वरूपैव च रतिस्त्वसौ। कृष्णादिकर्मकास्यादहेतुत्वं प्रतिपद्यते॥

रति लक्षित होती है। पूर्णाङ्कस्थलीय रति उदित होते ही जीव कृतार्थ हो जाता है। रतिको प्राप्त करने वाले पुरुषोंका देह त्याग तक प्रपञ्च सम्बन्ध रहता है। प्रपञ्चके प्रति उन्मुखता रतिकी विकृति है। ईश्वरके प्रति उन्मुखता ही उसकी विकृतिसे मुक्ति या अपनी यथार्थ प्रकृति है।

रति या भाव दो प्रकारके होते हैं—(१) साधनाभिनिवेशज भाव और (२) प्रसादजभाव।

साधनाभिनिवेशज भाव भी दो प्रकारके होते हैं—

(१) वैध-साधनाभिनिवेशज भाव।

(२) रागानुगसाधनाभिनिवेशज भाव।*

श्रद्धायुक्त साधकका साधनाभिनिवेश ही क्रमशः परमेश्वरके प्रति रुचि उत्पन्न करता है। वही रुचि क्रमशः साधनाभिनिवेशके पश्चात् आसक्ति बन कर अन्तमें रतिका रूप धारण करती करती है। साधनका यही क्रमविकाश है। देवर्षि नारदजीका जीवन-चरित्र ही वैधसाधाभिनिवेशज भावका उदाहरण है। पद्मपुराणोक्त एक रागानुगा भक्त-स्त्रीकी भाव प्राप्ति ही रागानुगासाधाभिनिवेशज भावका उदाहरण है।+

प्रसादज भाव दो प्रकारके होते हैं—

(१) कृष्ण-प्रसादज भाव

(२) भक्त-प्रसादज भाव

कृष्ण-प्रसादज भाव भी तीन प्रकारके होते हैं—(१) वचिक, (२) आलोकदान और (३) हार्द*। जब भगवान किसीके प्रति प्रसन्न होकर वाणी द्वारा उसके ऊपर कृपा करते हैं, तब उसे वाचिकप्रसाद कहते हैं। जब भगवान साक्षात् रूपसे दर्शन देकर किसी पर कृपा करते हैं तब उसे आलोकदान कहते हैं। जब भगवान किसीके प्रति प्रसन्न होकर उसके हृदय में उत्कृष्ट भावोंका उदय कराते हैं, तब उसे हार्द प्रसाद कहते हैं। नारद आदि भगवद्भक्तोंकी कृपासे अनेकों जीवोंके हृदयमें भाव उदित हुए हैं। ऐसे भक्तोंकी कृपासे उदित होने वाले भावोंको भक्त-प्रसादज भाव कहते हैं+। भगवद्भक्तोंके अन्दर एक महान शक्ति रहती है। वे उस शक्ति द्वारा कृपा पूर्वक दूसरे जीवोंके हृदयमें शक्तिका सञ्चार कर

* वैधीरागानुगामार्गभेदेन परिकीर्त्तितः। द्विविधः खलु भावोऽत्र साधनाभिनिवेशजः॥
साधनाभिनिवेशस्तु तत्र निष्पादयन् रुचिम्। हरावासक्तिमुत्पाद्य रतिं संजनयत्यसौ॥
(भ. र. सि. पू. ३ ल)

+ इत्थं मनोरथं बाला कुर्वती नृत्य उत्सुका। हरि प्रीत्या च तां सर्वां रात्रिमेवात्यवाहयत्॥
पद्मपुराण

* साधनेन बिना यस्तु सहसैवाभिजायते। स भावः कृष्णतद्भक्तप्रसादज इतीर्यते॥
प्रसादा वाचिकालोकदानहार्दादयो हरेः। प्रसाद आन्तरो यः स्यात् स हार्द इति कथ्यते॥
(भ.र. सि. पू. ३)

+ गुणैरलमसंख्येयैर्माहात्म्यं तस्य सूच्यते। वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः॥ (भा. ७।४।३६)

सकते हैं। परमभक्त नारदजीकी कृपासे प्रह्लाद और बहेलियेकी भगवानके प्रति स्वाभाविकी रति उदित हुई थी।

शक्ति-सञ्चारके सम्बन्धमें एक विशेष बात जान लेनी आवश्यक है। प्रेमी भक्तोंकी शक्ति असीम होती है। वे लोग अतिशय पापी आदि जिस किसी भी पात्रके प्रति कृपा करके उसमें अपनी शक्तिका सञ्चार कर सकते हैं। भाव-भक्तगण साधन भक्तोंके प्रति कृपा करके अपनी-अपनी योग्यताके अनुरूप शक्तिका सञ्चार कर सकते हैं। अर्थात् ये लोग अपनी शक्ति द्वारा बहिर्मुख व्यक्तियोंकी प्राक्तन योग्यताके अनुसार उनकी भगवानमें रुचि उत्पन्न कर सकते हैं। वैध और रागानुग भक्तके साधक-भक्तजन शिक्षा और उदाहरणके द्वारा बहिर्मुख लोगोंकी उनके प्राक्तन संस्कारके अनुरूप परमेश्वर में श्रद्धा उत्पन्न करा सकते हैं ※। यहाँ एक बात और भी उल्लेखयोग्य है कि साधारण रूपमें जीव साधन द्वारा ही भाव भक्ति प्राप्त करते हैं। प्रसादज भाव कहीं बिरला ही देखा जाता है। अत्यन्त निम्नाधिकारी भी प्रसाद अर्थात् कृपा प्राप्त कर भावका अधिकारी बन जाता है। भगवानकी अचिन्त्य शक्ति और विधियोंका प्रभाव ही ऐसा होनेका एकमात्र हेतु है। ऐसे प्रसादको कोई भगवान का अन्याय या अविचार नहीं कह सकता; क्योंकि भगवान श्रीकृष्णचन्द्र सर्वतंत्र स्वतन्त्र हैं। उनके लिए ऐसा अधिकार अन्याय नहीं है।

न्याय किसे कहते हैं? परमेश्वरकी इच्छा ही न्याय है। उनकी इच्छासे जो विधियाँ बनी हैं, उनका पालन करना ही जन-साधारणमें न्याय-पक्ष है। जो व्यक्ति स्वतन्त्र इच्छामय हैं, उनके समीप विधि अतिशय क्षुद्र है। विधि भगवानके अधीन होती है। मनुष्यके लिए आदर्श है। उनके लिये जो न्याय और अन्यायका विचार है, भगवान श्री चन्द्रकृष्ण उससे सर्वतोभावेन परे हैं।

भक्त-भेदसे पाँच प्रकारकी रतियाँ

भक्तोंके भेदसे रति भी पाँच प्रकारकी होती है+। रसविचारके प्रसङ्गमें उनका पृथक रूपसे विचार दिया जायगा।

जिस व्यक्ति हृदयमें भावका अंकुर पैदा हो जाता है, उनका जीवन अतिशय पवित्र हो जाता है। वैधभक्तोंके जीवनमें रति उत्पन्न होने पर उसमें जो सब परिवर्तन स्वभाविक हैं वे अवश्य ही होते हैं। विधिका बन्धन बहुत अंशोंमें शिथिल हो पड़ता है। आचार भी कुछ हद तक स्वतन्त्र हो पड़ता है। भाव-जीवन वैधजीवनमें एक-बा-एक परिवर्तन नहीं ला देता, बल्कि भावुकके कार्य-समूह विधिसे स्वतन्त्र प्रतीत होने लगते हैं। रति ही

※ प्राप्त श्रद्धा पुरुष ऐसा कहते हैं—

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत् प्रणामे दृष्टिः सतां दरशनेऽस्तु भवत्तनुनाम्॥

(भा. १०।१०।३८)

+ भक्तनां भेदतः सेयं रतिः पञ्चविधा मता। (भ. र. सि.)

उनके समस्तकार्योंकी नियामिका होती है+। भावुक व्यक्ति स्वैर (स्वतन्त्र) भावापन्न होने पर भी उसके द्वारा कभी भी कोई उपद्रव या अन्याय होने की सम्भावना नहीं होती। सबसे मुख्य बात यह है कि भावुक व्यक्तिके हृदयमें पाप और पुण्यमें रुचि नहीं होती। भावुक अपना यह कर्त्तव्य कर्म है ऐसा सोच कर कोई कर्म नहीं करता। वह किसीका अनुकरण भी नहीं करता। शरीर, मन, आत्मा, समाज आदिकी संरक्षण क्रियाएँ पूर्व-पूर्व अभ्यासके कारण अनायास ही हुआ करती हैं। जब कि पुण्य कार्योंके प्रति ही उनकी कोई रुचि नहीं होती, तब पाप कार्योंके प्रति उनकी कभी भी रुचि हो सकती है—यह असम्भव है। कभी-कभी रतिके कारण उनके कुछ कार्य वैध आचारोंके विपरीत जान पड़ते हैं; परन्तु वैध भक्तोंको उन कार्योंको देख कर उनके प्रति दोष बुद्धि नहीं रखनी चाहिए। जिनके हृदयमें भाव उदित हो पड़ता है, उनका जीवन धन्य है ※। उनकी निन्दा करनेसे अथवा उनके प्रति दोष बुद्धि रखनेसे वैध भक्तोंका भक्ति-धन क्रमशः क्षीण हो जाता है। भाव भक्तका जीवन साधन भक्तोंके सदृश ही होता है। तथापि भाव जीवन में कुछ नवीन लक्षण सदैव आलोचनीय हैं।

द्वादश-वर्ष

प्रागैतिहासिक युगमें जो साहित्य प्रचलित था, उस साहित्यका प्रचलन आज भी हमारे देशमें प्रचुर परिमाणमें दृष्टिगोचर होता है। उस साहित्यमें थोड़ासा संस्कार किया गया है, इसलिये उसे संस्कृत-साहित्य कहा जाता है। वही श्रौत-साहित्य का आनुगत्य लाभकर निजस्व धाराका वैशिष्ट्य आजतक अक्षुण्ण रखा है। वर्तमान संस्कृत-साहित्य-जगत भी उसका अनुसरण कर रहा है। इस अनुसरण-पद्धतिके भीतर विभिन्न मतभेद परिलक्षित हो रहे हैं। मतभेद ही साहित्य या चिन्ताधाराकी उन्नतिका मूल करण है।

जिस प्रकार क्रमोन्नतिशील-चिन्ता जगतकी ओर दृष्टिपात करनेसे हृदयमें आनन्दकी लहरें उठने लगती हैं, उसी प्रकार क्रमाधोगति-मुखी चिन्ता-जगतकी ओर दृष्टिपात करनेसे हृदय दुःखके गहरे अन्धकारमें डूब जाता है। इन दोनों प्रकारकी प्रगतियोंमें परस्पर वैशिष्ट्य विद्यमान रहने पर भी एकके अभावमें दूसरीका अधिष्ठान स्वीकृत नहीं

+ क्वचिद्रुदन्त्यच्युत चिन्तया क्वचिद् हसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः॥ (भा. ११।३।३२)
शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः॥ (भा. ११।२।३९)
नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित्। क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह।
क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्श निर्वृतः। अस्पन्द प्रणयानन्द सलीलामीलितेक्षणः॥ (भा. ७।४।४०-४१)
※ जने चेज्जात भावेऽपि वैगुण्यमिव दृश्यते। कार्या तथापि नासूया कृतार्थः सर्वथैव सः॥ (भ. र. सि. पू. ३ ल.)

होता; क्योंकि दोनों ही गति हैं । निम्नगतिका परिचय देनेके लिए उर्द्ध्वगतिकी स्थिति नितांत आवश्यक है। साथ ही उर्द्ध्वगतिका परिचय देनेके लिये निम्नगतिका अधिष्ठान अवश्य ही स्वीकार करना पड़ता है। हम प्राचीन प्राग-ऐतिहासिक युगके इतिहाससे जान पाते हैं कि असुर-कुलमें भी सुरपतिका आविर्भाव होता है; जैसे असुर सम्राट हिरण्यकशिपुके घरमें देव-बंदित प्रह्लाद महाराजका आविर्भाव हुआ था। कलियुगके प्रारम्भमें या द्वापर के अन्तमें जो श्रीमद्भागवत श्रीवेदव्यास द्वारा प्रकाशित हुआ है, उस अखिल शास्त्र चूड़ामणि-ग्रन्थसम्राट श्रीमद्भागवतके सप्तम स्कंधमें ऐसा कहा गया है कि—अनाह्लाद-स्वरूप हिरण्यकशिपुके आत्मजरूपमें प्रह्लाद महाराजका आविर्भाव हुआ। अतएव विरुद्धधर्मोंका समावेश अचिन्त्य-भेदाभेद-तत्त्वका निगूढ़ रहस्य है। श्रील ठाकुर भक्तिविनोद ने स्वरचित दार्शनिक चिन्ताधारा सम्पन्न 'कल्याण-कल्पतरू' में उसके सुपक्व फलरूप विचारको इस प्रकार व्यक्त किया है—

चिज्जड़ेर द्वैत जिनि करेन स्थापन,
जड़ीय कुतर्क - बले हाय।
भ्रम जाल तार बुद्धि करे आच्छादन
विज्ञान-आलोक नाहि भाय ।।१।
चित्तत्त्वे आदर्श बलि जाने जेइ जने,
जडे अनुकृति बलि मानि ।
ताहार विज्ञान शुद्ध - रहस्य साधने,
समर्थ बलिया आमि जानि ।।२।।
(गौड़ीय गीति गुच्छ २ खण्ड, १७५ पृष्ठ)

[अर्थात् जो लोग जड़ीय तर्कके बल पर चित् और जड़में द्वैत भाव स्थापन करते हैं—उनको पृथक-पृथक मानते हैं, उनकी बुद्धि भ्रम-जाल द्वारा आच्छादित हैं; उनको भगवत्तत्त्व विज्ञानरूप आलोक रुचिकर प्रतीत नहीं होता है। जो लोग चित् तत्त्वको मूलतत्त्व मानते हैं तथा जड़ जगतको मूल चित् तत्त्वकी छाया मानते हैं, मैं उन्हीं लोगों के तत्त्वको विशुद्ध विज्ञान मानता हूँ। ऐसा शुद्ध विज्ञान ही रहस्यपूर्ण भगवत्तत्त्व तक पहुँचानेमें समर्थ है।]

अतः ऊर्द्ध्व और अधः—ये दोनों ही गतियाँ विद्युतकी भाँति तीव्र गति युक्त हैं। ग्रन्थ-सम्राट् श्रीमद्भागवतके प्रह्लाद-उपाख्यानमें हमारे लिए जो शिक्षा दी गई है, उसीमें हमारा अनन्त कल्याण निहित है। आजकल कुछ धूर्त लोग ईर्ष्यावश श्रीमद्भागवतकी मर्यादा उल्लंघन करने की असफल चेष्टा कर रहे हैं। हम ऐसे भण्ड और अनार्य पण्डिताभिमानियोंको युक्ति तर्क और शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा खण्डित-विखण्डित कर उन्हें चिर-कालके लिए यवन समाधि प्रदान करनेके लिए प्रस्तुत हुए हैं।

श्रीभागवत पत्रिकाका द्वादश वर्ष एक शुभ वर्ष है। द्वादश संख्या प्रचीनतम शिक्षा-साहित्यमें एक अभिनव शुभ संख्या है। इस द्वादश संख्याको नौसे गुणा करने पर "१०८" 'एक सौ आठ' नामक सर्वोत्तम संख्या प्रकाशित होती है। श्रील वेदव्यास ने श्रीमद्भागवतकी रचना करते समय द्वादश वैष्णवोंका स्मरण करके उनमें से श्रीप्रह्लाद

महाराजका विशेष रूपसे उल्लेख किया है। श्री भागवत पत्रिका द्वादश वर्षमें पदार्पण करके श्री व्यासानुगत्यमें उपर्युक्त द्वादश वैष्णव महाजनोंका अर्चन करेगी। साथ ही उन द्वादश वैष्णवोंके पारमार्थिक जीवनका आचार-प्रचार करेगी। द्वादश वैष्णव ये हैं —

स्वयम्भूर्नारदः शंभुः कुमारः कपिलो मनुः।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम ।। (भा०)

ब्रह्मा, शम्भु, नारद, चारों कुमार, कपिलदेव, मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बलि, शुकदेव और यम महाराज—ये बारह वैष्णव हैं। इनमेंसे श्रीप्रह्लाद महाराजने अपने पिता हिरण्यकशिपुको जिस नवधाभक्तिका उपदेश दिया था, वह श्रीमद्भागवत में एक अमूल्य पारमार्थिक रत्न है। इस नवधा भक्तिके नौ अङ्कसे द्वादश वैष्णवोंकी द्वादश संख्यासे गुणा करने पर ९×१२=१०८ (अष्टोत्तर शत) संख्या प्रकटित है अर्थात् ये द्वादश महाजन नौ गुणित होकर नवधा भक्तिका संसारमें प्रचार करते हैं। श्रीभागवत पत्रिकाके वर्त्तमान वर्षका यही आदर्श है।

श्री गौरलीलामें श्रीहरिदास ठाकुर द्वारा उच्च-स्वरसे कीर्तन किया हुआ अष्टोत्तर संख्यक या असंख्यक महामन्त्रका कीर्तन करना ही जीवमात्रके लिए जीवातु है। इन हरिदास ठाकुरको कोई-कोई उन्हीं प्रह्लाद महाराजका अवतार बतलाते हैं। जो लोग ऐसा कहते हैं, वे लोग ऐसा प्रतीत होता है कि मायिक कालके ऊपर निर्भर करके ही कहते हैं अर्थात् सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—इस काल पर्यायके प्रति लक्ष्य करके ही साधारण मरणशील जीवोंको शिक्षा दिए हैं या देते हैं। परन्तु लीलाकी नित्यता स्वीकार करनेसे उसमें काल-क्षोभ्य धर्म प्रवेश नहीं कर सकता। नित्य कहनेसे वर्तमानका बोध होता है। अतीत और भविष्य नित्यत्वके बाधक हैं। अतएव नित्य गौर-लीला कलियुगके कालक्षोभ्य धर्मद्वारा आवृत होने योग्य या प्रकाशित होने योग्य नहीं है। प्रह्लाद महाराज जिस प्रकार नित्य तत्त्व हैं, श्रील हरिदास ठाकुर भी उसी प्रकार नित्यतत्त्व हैं। ऐसी दशामें हरिदास ठाकुर पहले हुए या प्रह्लाद महाराज पहले हुए हैं–इस प्रकारकी शङ्का या पूर्वपक्ष उठनेकी गुञ्जाइश नहीं है। दार्शनिक चिन्ता राज्यमें एवं परतत्त्वके पारतम्य लक्ष्य करनेसे आंशिक विकाशसे पारतम्यका आदित्व अङ्गीकृत हुआ करता है। श्रीगौर सुन्दर परतत्त्व हैं—इसे सभी स्वीकार करते हैं। इसलिए उनके लीला विलासमें सहायक पारिषद वर्गको भी आदि मानना पड़ेगा। हरिदास ठाकुरके अवतार स्वरूप श्रीप्रह्लाद महाराजकी शिक्षा ही श्रीभागवत पत्रिकाके इस द्वादश वर्षका आदर्श है।

हम श्रीभागवत पत्रिकाके पाठक-पाठिकाओंके चरण कमलोंकी वन्दना करके उनका जयगान कर रहे हैं और सविनय प्रार्थना करते हैं कि आप सभी अनुकूलभावसे श्रीभागवत-पत्रिकाका पाठ, कीर्तन और अनुशीलन करें। श्रीभागवत-पत्रिकाके पाठका फल श्रीमद्भागवतका पाठ करनेका फल है। अतएव-

"श्रुतोऽनुपठितो ध्यात आदृतो वानुमोदितः।
सद्यः पुनाति सद्धर्मो देव विश्वद्रुहोऽपि हि ॥

श्रीकृष्ण

मोर मुकुट से मोहित करके,
गोप-वधू सङ्ग किया विहार।
नमो नमो गोपी - वल्लभ - प्रभु,
दीनबन्धु हन्ता कंसारि।
काली थी रात भयावह सी,
तारा गण हो गये विलुप्त।
मार्ग शून्य रवि-सुता निनादित,
नर नारी निद्रा में सुप्त
घन - गर्जन गम्भीर घोष था,
वृष्टि हुई आसार अनिल।
झंझावात प्रवात प्रकम्पित,
होता था तब लोक-निखिल॥
उसी समय कारा के अन्दर,
दम्पति बैठा था छविमान।
सोच रहा था अपने मन में,
क्या करता है भगवान॥
सप्त सन्तान हुई काल-मुख,
क्रूर - करों के कारण ही।
अन्तिम है सन्तान हमारी,
उसका हिय में है व्रण ही॥
यदि हो गया अन्त भी इसका,
सन्तान - हीन हम तुम होंगे।
भव - सागर में बिन खेवट के,
बोहित में पड़ कर रोंगे॥
"कंस-बहिन ! तुम धीरज धारो,
संरक्षक अपने हैं राम।
उनके आश्रित जो रहता है,
पूरण होते उनके काम॥"
कहा भूप वसुदेव - देव ने,
मेरा निश्चित् अभिमत यह।
वही विश्व का पोषक रक्षक,
संहारक संरक्षक वह॥

—श्रीशंकरलाल चतुर्वेदी एम. ए. साहित्यरत्न

छप रहा है ! छप रहा है !!

जैवधर्म

हमें यह सूचित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि वर्तमान वैष्णव जगतमें विशुद्ध भक्ति-भागीरथीकी पुनीत धाराको पुनः प्रबल वेगसे प्रवाहित करनेवाले, विभिन्न भाषाओंमें भक्ति सम्बन्धित सैकड़ों ग्रन्थोंके रचयिता, श्रीचैतन्य महाप्रभुके पार्षद सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा बंगलामें लिखित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ—'जैवधर्म' (जीवका धर्म) का हिन्दी-संस्करण छप रहा है और शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है।

'जैवधर्म' कहनेसे जीव-सम्बन्धी धर्म या जीवके धर्मका बोध होता है। वाह्यदृष्टि से विभिन्न देशोंकी विभिन्न जातियों एवं विभिन्न वर्गोंके मनुष्यों, पशु-पक्षियों, कीट-पतङ्गों तथा दूसरे-दूसरे विभिन्न प्राणियोंके धर्म भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होनेपर भी अखिल ब्रह्माण्डोंके निखिल जीवसमूहका नित्य और सनातन-धर्म एक है। जैवधर्म-ग्रन्थमें इसी सार्वत्रिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनिक नित्य-धर्म—'जैवधर्म' का हृदयग्राही साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। इसमें वेद, वेदान्त, उपनिषद, श्रीमद्‌भागवत आदि पुराण, ब्रह्म-सूत्र महाभारत, इतिहास, पंचरात्र 'षट्सन्दर्भ, श्रीचैतन्यचरितामृत, भक्तिरसामृतसिन्धु और उज्ज्वलनीलमणि आदि सद्‌ग्रन्थोंके अतिशय गम्भीर और गहन विषयोंका सार सरस, सरल और उपन्यास-प्रणालीमें गागरमें सागरकी भाँति भरा हुआ है।

इस ग्रन्थमें सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजनके रूपमें ग्रथित भगवतत्त्व, जीवतत्त्व शक्तितत्त्व, जीवकी बद्ध और मुक्त दशाएँ, कर्म, ज्ञान और भक्तिका स्वरूप एवं तुल-नात्मक विचार, वैधीरागानुगा भक्तिका सिद्धान्तपूर्ण सरस विचार-वैशिष्ट्य तथा श्रीनाम भजनकी सर्वश्रेष्ठता आदि विषयोंका अपूर्व मार्मिक विवेचन है।

हिन्दी जगतमें अबतक वैष्णव-धर्मके परमोच्च दार्शनिक सिद्धान्तों एवं सर्वोत्कृष्ट उपासना पद्धतिका तुलनात्मक बोध करानेवाले ऐसे अपूर्व सुन्दर एवं सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थका अभाव था। "जैवधर्म" हिन्दी जगत्‌में इस अभावकी पूर्त्ति कर दार्शनिक एवं धार्मिक जगतमें, विशेषतः वैष्णव जगतमें युगान्तर उपस्थित करेगा, इसमें सन्देह नहीं।

अतः पाठकोंसे हमारा विशेष अनुरोध है कि वे इस ग्रन्थरत्नका संग्रह कर अवश्य ही अध्ययन करें।